

भाषा, अस्मिता और शिक्षा सैद्धांतिक दृष्टियाँ और नीतिगत निहितार्थ

शुभम कुमार पति*
ऋषभ कुमार मिश्र**

प्रस्तुत लेख का उद्देश्य भाषा, शिक्षा और अस्मिता संबंधित सैद्धांतिक दृष्टियों की विवेचना करना है। इस विवेचना को प्रस्तुत करते हुए यह लेख तीन समांतर धाराओं को पहचानता है। प्रथम धारा, उत्तर औपनिवेशिक काल में भी विदेशी भाषा के चलन का पक्ष लेती है। दूसरी धारा, सांस्कृतिक अस्मिता और देशज ज्ञान परंपरा को प्रासंगिक मानते हुए स्थानीय भाषाओं का समर्थन करती है। तीसरी धारा, सर्वदेशीय समाज के लिए भाषा के नए रूप जिसमें शब्दों और मुहावरों का संकरण स्वीकार्य है, पर बल देती है। इस व्याख्या के निहितार्थ स्वरूप इस लेख में बहुभाषिकता, सांस्कृतिक अस्मिता और वैश्विक भाषा के विश्लेषणात्मक वर्गों को रेखांकित किया गया है। तदुपरांत इनके आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस लेख में विवेचना की गई है कि प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षण केवल सीखने की प्रक्रिया को सुगम नहीं करता, बल्कि यह सांस्कृतिक अस्मिता और वैचारिक स्वराज के लिए भी आधारभूमि तैयार करता है।

औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से स्वतंत्र हुए अधिकांश देशों की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा के भाषायी माध्यम का प्रश्न विचारणीय रहा है। औपनिवेशिक शासकों ने अपने देश की भाषा को प्रशासनिक, संपर्क तथा न्यायिक भाषा के रूप में उपनिवेशित राष्ट्रों में स्थापित किया। इस प्रक्रिया में विदेशी भाषा ने न केवल अपने भाषायी गुणों को

साझा किया, अपितु पश्चिमी ज्ञान परंपरा, संस्कृति तथा विचारों का आदान-प्रदान का रास्ता खोला। यह 'रास्ता' संवाद का मार्ग न होकर अंततः भाषायी वर्चस्व और विदेशी भाषा की प्रतिष्ठा में परिवर्तित हो गया। उत्तर-औपनिवेशिक दौर में भारत जैसे देशों में स्थानीय भाषाओं के साथ-साथ विदेशी भाषा (या औपनिवेशिक भाषा) के कई विकल्प उपलब्ध थे।

*अध्येता (शिक्षाशास्त्र), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र 440 001

**सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली 110 006

भाषायी विविधता के बीच ज्ञान की राजनीति, सामाजिक आकांक्षाओं की पूर्ति एवं संघर्षों से प्रभावित उत्तर-औपनिवेशिक शिक्षा नीतियों ने भाषा संबंधी सुझावों में एक संतुलन बनाने का प्रयास किया। इसके प्रमाणस्वरूप भारत की स्वतंत्र्योत्तर शिक्षा नीतियों में मातृभाषा, स्थानीय भाषा, विदेशी भाषा और भारतीय भाषाओं से संबंधित संस्तुतियों का अवलोकन कर सकते हैं। शिक्षा नीतियों में 'संतुलन' साधने की इस प्रक्रिया के तीन उपागम पहचाने जा सकते हैं। प्रथम, स्थानीय भाषाओं के साथ-साथ औपनिवेशिक भाषा (भारत के संदर्भ में अंग्रेजी) को महत्वपूर्ण मानना। इस उपागम का तर्क है कि विदेशी भाषा अब उपनिवेशित देश की भाषा बन चुकी है और इससे संबंधित देश की सामाजिक संरचना तथा भाषायी अस्मिता पर हस्तक्षेप करते हुए एक नए भाषायी वर्ग का निर्माण कर लिया है। इस वर्ग के हित की रक्षा 'ज्ञान की राजनीति' द्वारा ही संभव है। इस वर्ग जैसा बनने की आकांक्षा की पूर्ति हेतु भी विदेशी भाषा का ज्ञान एवं उसकी शिक्षा आवश्यक है। द्वितीय, औपनिवेशिक भाषा के प्रयोग को 'शोषित' राष्ट्र की संस्कृति और अस्मिता पर अधिग्रहण और प्रहार के तौर पर देखा गया। ज्ञान के औपनिवेशीकरण के लिए स्थानीय भाषाओं को सबसे शक्तिशाली माध्यम माना गया। अतः शिक्षा के माध्यम के तौर पर स्थानीय एवं देशज भाषाओं को स्थान पर बल दिया गया। तृतीय, औपनिवेशिक तथा स्थानीय भाषाओं के प्रयोग को एकीकृत करते हुए एक 'हाइब्रिडिटी' की कल्पना की गई। इसके अनुसार न तो विदेशी भाषा का पूर्णतया उन्मूलन हो सकता है और न ही स्थानीय भाषाओं

की प्रतिष्ठा। हमें निम्न उपागमों में उत्तर-औपनिवेशिक काल के बारे में तीन तरह की आधारभूत मान्यताएँ देखी जा सकती हैं। प्रथम उपागम में अंतर्निहित है कि उत्तर-औपनिवेशिक काल वास्तव में औपनिवेशिक काल का विस्तार है। द्वितीय उपागम में माना गया है कि उत्तर-औपनिवेशिक काल, औपनिवेशिक काल का विरोध (औपनिवेशीकरण) है एवं तीसरा उपागम स्वीकार करता है कि उत्तर-औपनिवेशिक समाज अपने आप में एक 'तीसरी दुनिया' (थर्ड वर्ल्ड) है। वैश्वीकरण के प्रभाव में धीरे-धीरे हम सर्वदेशीय समाज बनते जा रहे हैं, जहाँ भाषाओं के बीच शब्दों, मुहावरों एवं अर्थों का संचरण स्वाभाविक है। उक्त तीन विचार दृष्टियों को जब शिक्षा नीतियों में रूपांतरित किया जाता है, तो निम्नलिखित तीन प्रवृत्तियाँ प्रकट होती हैं।

उपनिवेशकों की भाषा को महत्व देना

भाषा, शिक्षा एवं अस्मिता पर विचार करने वाले चिंतकों का एक वर्ग उत्तर-औपनिवेशिक काल को औपनिवेशिक काल का विस्तार मानता है। इस स्वीकृति के अनुरूप यह वर्ग विदेशी भाषा प्रमुखतः अंग्रेजी के पक्ष में तर्क देता है। इनके तर्क के दो आधार हैं। प्रथम, औपनिवेशिक भाषा (अंग्रेजी) एक ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा वंचित समुदायों के स्वर को वैश्विक स्तर पर उनकी सांस्कृतिक अस्मिता के साथ प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिला (अचेबे, 1965)। द्वितीय, अंग्रेजी भाषा स्थानीय भाषाओं की बहुलता के बीच एक ऐसा उभयनिष्ठ माध्यम बनती है, जो भाषाओं के बीच संप्रेषण के अंतराल को कम करती है, अचेबे के इन दोनों तर्कों से सहमति व्यक्त करते हुए कैनेपारी-लैबिब (2000) अफ्रीका के संदर्भ में

उदाहरण देते हैं कि वहाँ के देशज भाषा-भाषी समूहों के बीच अंतराल को समाप्त करने में अंग्रेजी भाषा ने सकारात्मक भूमिका निभाई। इसने परस्पर संप्रेषण, संपर्क एवं सांस्कृतिक अंतराल को कम करने का कार्य किया। अतः बहुभाषिकता तो अपरिहार्य है, लेकिन वे बहुभाषिकता के प्रारूप में औपनिवेशिक भाषा की श्रेष्ठता को वैध बनाते हैं। इस विचार का समर्थन करने वाले यह भी मानते हैं कि उपनिवेशीकरण की भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा में प्रतिरोध की क्षमता है और इसकी वैश्विक पहुँच होने के कारण कोई भी अपने विचारों को वैश्विक स्तर पर प्रकट कर समर्थन प्राप्त सकता है (कैरासिओलो, 2012)। अप्पिया (2006) उत्तर-औपनिवेशिक समाज में भाषा और अस्मिता के संदर्भ में एक सर्वदेशीय (कॉस्मोपॉलिटन) दृष्टिकोण का तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनका तर्क है कि उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक अखंडता और विरासत से समझौता किए बिना, अंग्रेजी सहित कई अन्य भाषायी और सांस्कृतिक अस्मिताओं को अपना सकते हैं। उनका सुझाव है कि अंग्रेजी भाषा एक सेतु की तरह कार्य करती है, जो विविध समुदायों के मध्य संवाद और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की सुविधा प्रदान करती है। इस वर्ग के चिंतकों ने अंग्रेजी या इस जैसी अन्य औपनिवेशिक भाषा को महत्व देते हुए इसके प्रभुत्व की सीमा के भीतर ही स्वदेशी तथा स्थानीय भाषा को स्थान दिया। इस तरह से औपनिवेशिक भाषा और स्थानीय या देशी भाषाओं के बीच एक पदानुक्रम स्थापित होता है, जिसमें देशज भाषाएँ निचले पायदान पर ही देखी जाती हैं।

विऔपनिवेशीकरण के लिए भाषा

चिंतकों का यह समूह उत्तर-औपनिवेशिक काल को औपनिवेशीकरण के काल के रूप में देखता है। यह समूह अंग्रेजी या औपनिवेशिक भाषाओं पर क्षेत्रीय या स्वदेशी भाषाओं को प्राथमिकता देने की वकालत करता है। इसमें प्रायः मातृभाषा में शिक्षण के रास्ते सांस्कृतिक संरक्षण, पहचान और सशक्तिकरण पर बल दिया जाता है। इसके उदाहरण रूप में थिओनो (1987) का तर्क देख सकते हैं। इनके अनुसार स्थानीय संस्कृतियों और ज्ञान की अधिक प्रामाणिक अभिव्यक्ति हेतु स्थानीय भाषाओं का उपयोग आवश्यक है। थिओनो (1987) मानते हैं कि उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में लेखकों और बुद्धिजीवियों को केवल औपनिवेशिक विरासतों की आलोचना करने और अपनी सांस्कृतिक पहचान पर बल देने के लिए अंग्रेजी का उपयोग करना चाहिए। अंग्रेजी भाषा को प्रतिरोध के एक उपकरण और उत्तर-औपनिवेशिक दुनिया की वास्तविकताओं को व्यक्त करने के साधन के रूप में नियोजित किया जा सकता है। फैनन (1961) यह तर्क देते हैं कि उत्तर-औपनिवेशिक काल में स्थानीय भाषाओं के उपयोग से व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक जड़ों से फिर से जुड़ते हैं और उपनिवेशवाद के मनोवैज्ञानिक प्रभावों का विरोध करते हैं। सेनघोर (1970) एवं फ्यूसर (1988) यह तर्क देते हैं कि स्थानीय (जनजातीय) भाषाओं के उपयोग करने से किसी भी समुदाय को अपनी मौखिक परंपराओं और लोककथाओं को प्रामाणिक रूप से व्यक्त करने की सुविधा मिलती है। फ्यूसर (1988) इसके लिए सोयिका एवं टूटूओला

के उपन्यासों का विश्लेषण करते हैं और दर्शाते हैं कि जनजातीय भाषाओं का उपयोग समसामयिक और प्रासंगिक मुद्दों से जुड़ने के लिए भी किया जा सकता है। इस समूह के चिंतकों ने औपनिवेशिक भाषा पर स्थानीय भाषा को प्राथमिकता दी है। इन्होंने औपनिवेशिक भाषाओं की आलोचना की और स्वतंत्र सांस्कृतिक अस्मिता का पक्ष लेते हुए विचारों के विऔपनिवेशीकरण के लिए मातृभाषाओं के पक्ष में तर्क दिया। इसके समानांतर ही ये विचारक वैश्विक मंच पर अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की उपस्थिति के लिए वैश्विक भाषा के उपयोग से सहमति भी व्यक्त करते हैं।

सर्वदेशीय समाज के लिए भाषाओं का संकरण

वर्तमान वैश्विक एवं नवउदारवादी संदर्भ में चिंतकों का एक ऐसा वर्ग भी उभरा है, जो औपनिवेशिक भाषा एवं स्थानीय भाषा के बीच सामंजस्य की संभावना को देखता है। इस वर्ग के विचारक मानते हैं कि स्थानीय भाषाओं तथा औपनिवेशिक (अंग्रेजी या फ्रेंच) भाषाओं के एकीकरण से एक नई भाषा की कल्पना की जा सकती है। यह भाषा, दोनों प्रकार के भाषाओं के व्याकरण, उच्चारण पद्धति, शब्दकोश, संरचना के मिश्रित रूप में निर्मित हो सकती है। 'हिंग्लिश' इस संभावना का एक उदाहरण मात्र है। सैद्धांतिक रूप से इस वर्ग के विद्वानों ने औपनिवेशिक संस्कृति एवं स्थानीय संस्कृति के गुणों के मिश्रण से एक नई दुनिया या तीसरी दुनिया की कल्पना भी की जिसके सांस्कृतिक गुणों या उपकरणों (परिवेश, भाषा, परिधान, ज्ञान परंपरा आदि) पर औपनिवेशिक तथा स्थानीय संस्कृति के सांस्कृतिक गुणों या

उपकरणों के एकीकरण का प्रभाव होगा। इस वर्ग के प्रणेता एवं समर्थक सेसायर (1972) उपनिवेशवाद के आलोचक हैं, लेकिन वे यह तर्क भी देते हैं कि औपनिवेशिक तथा अफ्रीकी एवं अफ्रीकी-कैरेबियन सभ्यताओं के सांस्कृतिक संश्लेषण से एक नई दुनिया (आभासी एवं सैद्धांतिक रूप से) का निर्माण हुआ है। सेसायर ने भाषायी-सामाजिक बदलावों देखते हुए एक नई दुनिया के निर्माण के साधन के रूप में उत्तर-औपनिवेशिक समाजों के भीतर फ्रेंच और स्वदेशी दोनों भाषाओं के उपयोग पर बल दिया है, जो उनकी सांस्कृतिक और भाषायी विरासतों के सबसे मूल्यवान तत्वों को समाहित करती है। भाभा (1994) का यह मानना था कि उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भों में, औपनिवेशिक और स्वदेशी संस्कृतियों और भाषाओं के मिश्रण से भाषा और अस्मिता के नए रूप सामने आते हैं। संकरता की इस प्रवृत्ति ने सांस्कृतिक और भाषायी शुद्धता की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती दी है। रुश्दी (1992) ने एक नए और रचनात्मक उत्तर-औपनिवेशिक भाषायी एवं साहित्यिक परंपरा की कल्पना की है। इनके अनुसार अंग्रेजी या विदेशी या औपनिवेशिक भाषा, जब स्थानीय मुहावरों और लोक-साहित्य की परंपराओं से युक्त होती है, तो ऐसा साहित्य तैयार कर सकती है, जो स्थानीय और वैश्विक दोनों दर्शकों के साथ जुड़ेगी। उत्तर-औपनिवेशिक लेखकों के पास यह अवसर है कि वे स्थानीय भाषा शैली और अंग्रेजी भाषा की शैली को आपस में मिश्रित कर साहित्य की एक नई रचनात्मक परंपरा तथा प्रवृत्ति का विकास करें। हैरिस (1960) ने अपने साहित्यिक

रचनाओं में 'मल्टीवोकल नेटिव' की विधि का उपयोग किया। उनका तर्क था कि साहित्य और कला में स्वदेशी तथा औपनिवेशिक भाषा के एकीकरण से समाज के विभिन्न दृष्टिकोण को अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए एक उचित मंच का निर्माण हो सकता है (किंग एवं अन्य, 2000)। इसी तरह ब्रैथवेट (1984) ने कैरिबियाई देशों के संदर्भ में इन देशों की राष्ट्रीय भाषाओं का विश्लेषण करते हुए पाया कि वर्तमान समय में कैरिबियाई लोगों द्वारा बोली जाने वाली अंग्रेजी संभ्रांत और अभिजन अंग्रेजी न होकर दासों के रूप में लाए गए मजदूरों और नौकरों द्वारा अनुकूलित अंग्रेजी भाषा है। इनका तर्क स्पष्ट करता है कि भाषाओं और संस्कृतियों के एकीकरण से 'संकर' भाषा भी निर्मित होती है, जो इस भाषा को अपनाने वाले समुदायों को उत्तर-औपनिवेशिक दुनिया की जटिलताओं से निपटने में समर्थ बना सकती है।

भाषा विमर्श संबंधी उपर्युक्त तीनों विचार दृष्टियों से समकालीन संदर्भों में भाषा, शिक्षा और अस्मिता संबंधी निम्नलिखित निहितार्थ प्रकट होते हैं—

बहुभाषिकता— उपर्युक्त तीनों विचार दृष्टियाँ बहुभाषिकता को अपरिहार्य मानती हैं। प्रथम वर्ग के लिए बहुभाषिकता के केंद्र में 'औपनिवेशिक' भाषा को रखे बिना यह कार्य अधूरा है। द्वितीय वर्ग के लिए स्थानीय भाषाओं की विविधता ही पर्याप्त संसाधन है। औपनिवेशिक भाषा पर निर्भरता आवश्यक नहीं है। तीसरा वर्ग भाषाओं के परस्पर निकट आने से तैयार हो रही 'खिचड़ी' भाषा को भी मान्य करता है।

प्रतिरोध के लिए भाषा— प्रथम वर्ग का तर्क है कि अंग्रेजी उपनिवेशित समाज के सशक्तिकरण के साथ-साथ उनके प्रतिरोध के लिए भी अवकाश देती है। दूसरा वर्ग इस तर्क को खारिज करता है। इसका मानना है कि स्वबोध के बिना प्रतिरोध खड़ा नहीं हो सकता है। इसके लिए स्थानीय एवं देशज भाषाएँ ही महत्वपूर्ण हैं। तीसरा वर्ग प्रतिरोध के बजाय सामंजस्य का पक्षधर है।

वैश्विक भाषा— प्रथम वर्ग अंग्रेजी की विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठा के लिए प्रतिबद्ध है। वह इसके विरोध में हर तर्क को खारिज करता है। इसके लिए यथासंभव ज्ञान की संस्थानिक संरचना का सहयोग लेने की पैरवी करता है। दूसरा वर्ग, वैश्विक भाषा को जड़विहीन और सांस्कृतिक चेतना शून्य बनाने का माध्यम मानता है। इसके लिए वैश्विक मंच पर संप्रेषण अंतराल की स्थिति न हो इसके लिए वैश्विक भाषा आवश्यक है। इसकी अपरिहार्यता को यह समूह खारिज करता है। तीसरा वर्ग वैश्विक भाषाओं के स्वाभाविक संकरण को 'चलन' में लाकर उपयोग करने का पक्षधर है।

सांस्कृतिक अस्मिता— प्रथम वर्ग के लिए सांस्कृतिक अस्मिता से अधिक मुख्यधारा में समावेशन आवश्यक है। इनके लिए मुख्यधारा से मान्यता प्राप्त करने का रास्ता विदेशी भाषा के ज्ञान से होकर गुजरता है। दूसरे वर्ग के लिए सांस्कृतिक पुनरुत्थान एवं अस्मिता भाषा का सर्वप्रमुख कार्य है। तीसरा वर्ग स्थानीय अस्मिता को 'घिस चुकी' अवधारणा मानते हुए सर्वदेशीय समुदाय एवं अस्मिता की ओर आगे बढ़ने का आह्वान करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

भाषा, अस्मिता एवं शिक्षा के संदर्भ में *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* का प्रमुख उद्देश्य “बहुभाषिकता और अध्ययन-अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन” (पृष्ठ 07) देना है। इसके लिए प्रमुख रूप से स्थानीय एवं भारतीय भाषाओं की भाषिक एवं साहित्यिक परंपराओं को जारी रखना एवं प्रचुर मात्रा में अनुवादित सामग्री को तैयार करने की संस्तुति इस नीति में की गई है। इस तरह से यह नीति भारतीय भाषाओं को मजबूत कर उन्हें ज्ञान के विऔपनिवेशीकरण का माध्यम बनाना चाहती है। इस नीति में यह स्वीकार किया गया है कि 2-8 वर्ष की आयु के मध्य बच्चे अधिक तीव्रता एवं सक्रिय रूप से भाषाएँ सीखते हैं, इसलिए बुनियादी स्तर पर मातृभाषा पर अधिक बल देते हुए विद्यार्थियों को एक से अधिक भाषा में वाक्य निर्माण करने, त्रुटि रहित पढ़ने-लिखने एवं बुनियादी रूप से संवाद करने के सक्षम होने की अपेक्षा की गई है। विकसित देशों का उदाहरण लेते हुए नीति में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि “अपनी भाषा, संस्कृति और परंपराओं में शिक्षित होना कोई बाधा नहीं है, बल्कि वास्तव में शैक्षिक, सामाजिक और तकनीकी प्रगति के लिए इसका बहुत बड़ा लाभ ही होता है” (पृष्ठ 20)। नीति के अनुसार इस दृष्टि से भारतीय भाषाएँ दुनिया में सर्वोच्च स्थान रखती हैं, जिनमें प्राचीन एवं आधुनिक साहित्य के विशाल भंडार हैं और “सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से सभी युवा भारतीयों को अपने देश की भाषाओं के विशाल और समृद्ध भंडार और इनके साहित्य के

खजाने के बारे में जागरूक होना चाहिए” (पृष्ठ 21)। इसके साथ ही संस्कृत को ‘भारतीय भाषाओं के धरोहर के रूप में’ त्रिभाषा के मुख्यधारा विकल्प के साथ-साथ उच्चतर शिक्षा में भी एक महत्वपूर्ण विकल्प के साथ प्रस्तुत करने का सुझाव दिया गया है। यह सुझाव भाषा के माध्यम से सांस्कृतिक पुनरुत्थान की ओर प्रस्थान है, एक विकसित देश के रूप में भारत के भाषिक एवं साहित्यिक धरोहरों को और समृद्ध करने तथा भाषाओं के संरक्षण के लिए शास्त्रीय भाषाओं एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं का ज्ञान एवं उनको व्यावहारिक रूप से उपयोग करने की वकालत की गई है। वैश्विक भाषा के रूप में अंग्रेजी तथा विदेशी भाषा के रूप में कोरियाई, जापानी, थाई, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, पुर्तगाली और रूसी भाषा के अध्ययन और इन भाषाओं में दक्षता को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अंग्रेजी के वैश्विक महत्व को स्वीकार करते हुए नीति में उच्च गुणवत्ता वाले द्विभाषी पाठ्यपुस्तकों का निर्माण करने का सुझाव दिया गया है। वहीं विधि शिक्षा में राज्य स्तरीय संस्थानों को अंग्रेजी तथा राज्य की भाषा में विधि शिक्षा नीति विषय के अध्ययन को प्रस्तावित किया गया है। शिक्षा इस तरह के सुझाव प्रस्तुत करते हुए नीति भाषा की कृत्रिमता और जटिलता के बदले प्रयोजनमूलकता और व्यावहारिकता को प्राथमिकता देती है। इस शिक्षा नीति में भाषा संबंधी सुझाव मुख्य रूप से सांस्कृतिक अस्मिता, राष्ट्रीय अस्मिता, जेंडर अस्मिता तथा जुड़ाव की भावना को संबोधित करते हुए प्रस्तावित किए गए हैं।

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.-एस.ई.) 2023

उपर्युक्त सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के आलोक में यदि विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.-एस.ई.) 2023 का विश्लेषण किया जाए तो इसमें भी भाषायी द्वंद्वों के बीच संतुलन की प्रवृत्ति अवलोकनीय है। एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 के अनुसार भाषा की प्रवीणता व्यक्तियों को स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक गतिविधियों को समझने, विश्लेषण करने और उससे जुड़ने की क्षमता प्रदान करती है। किसी भाषा में दक्ष व्यक्ति में सांस्कृतिक जागरूकता और विचारों को अभिव्यक्त करने की बेहतर क्षमता को प्रदर्शित करने की अपार संभावनाएँ होती हैं। इस दृष्टि की स्वीकृति स्पष्ट करती है कि एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 ने शिक्षा के माध्यम से विऔपनिवेशीकरण का मार्ग प्रशस्त किया गया है। इसके अनुरूप एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 में भाषा और संस्कृति के संबंध की चर्चा करते हुए 'सांस्कृतिक जुड़ाव', 'सांस्कृतिक जागरूकता', 'सांस्कृतिक संवेदनशीलता', 'सांस्कृतिक भागीदारी', 'सांस्कृतिक समृद्धि', 'सांस्कृतिक विविधता' एवं 'सांस्कृतिक विकास' जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। भारत के बहुभाषिक संदर्भ को संज्ञान में लेते हुए यह दस्तावेज बहुभाषिकता को सांस्कृतिक एकता का आधार मानता है। यह दस्तावेज बहुभाषिकता के केंद्र में भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता देकर ज्ञान के विऔपनिवेशीकरण के लिए अपनी प्रतिबद्धता को प्रकट करता है। एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 में रेखांकित किया गया है कि एक से अधिक भाषाओं का

ज्ञान विद्यार्थियों को बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध करता है। बहुभाषी विद्यार्थी विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक, व्याकरण एवं भाषायी परंपरा से परिचित होते हैं, जिससे वे एक से अधिक तरीकों से सोचने में सक्षम होते हैं। यह सक्षमता सामाजिक अंतःक्रियाओं में संदर्भ और संस्कृति के योग से सांस्कृतिक अस्मिता के विकास में सहायक होती है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 त्रिभाषा सूत्र की एक नई परिकल्पना को प्रस्तुत करता है। इसमें तीन भाषाओं (आर 1, आर 2 एवं आर 3) की प्रकृति को विस्तृत रूप से परिभाषित किया गया है। इस श्रेणी में शामिल किए जाने वाली भाषाओं का निर्धारण राज्यों का दायित्व है। आर 1, आर 2 एवं आर 3 में मौखिक और लिखित रूप के साथ-साथ संवाद कौशल में धारा-प्रवाह रूप से दक्ष करने का लक्ष्य रखा गया है। साथ ही, यह उद्देश्य रखा गया है कि इन भाषाओं में आलोचनात्मक चिंतन करने, भाषा के स्वरूप को समझने, साहित्यिक विश्लेषण करने, तुलना करने, रचनात्मक उत्पादन जैसे कौशलों में पूर्ण रूप से दक्ष होने पर बल दिया जाएगा। उच्च माध्यमिक स्तर में किन्हीं दो भाषाओं के अध्ययन का प्रावधान है, जिसमें से कम से कम एक भारतीय भाषा होना आवश्यक है। इस स्तर में विद्यार्थी अगर संभव हो तो आधुनिक भारतीय भाषा या शास्त्रीय भाषाओं के अध्ययन के साथ-साथ फ्रेंच, जर्मन, जापानी और कोरियाई जैसी विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन कर सकते हैं।

निष्कर्ष और निहितार्थ

एन.ई.पी. 2020 एवं एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 की उपर्युक्त क्रियान्वयन योजना से स्पष्ट है कि यह नीति

और पाठ्यचर्या की रूपरेखा भारतीय भाषाओं को ज्ञान के विऔपनीवेशीकरण के माध्यम के रूप में स्वीकृति प्रदान करती है, इन दस्तावेजों की स्पष्ट मंशा है कि विद्यालय स्तर पर भाषाओं का अध्ययन इस प्रकार से होना चाहिए कि विद्यार्थियों का संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास उनकी संस्कृति और संदर्भ से परिवेष्टित हो। प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में उक्त सैद्धांतिक स्वीकृति के निम्नलिखित निहितार्थ हैं—

- भाषा शिक्षण का लक्ष्य होना चाहिए कि विद्यार्थी सीखी गई भाषाओं का स्थानीय, राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर उपयोग कर सकें। इसके साथ ही ये भाषाएँ उन्हें उनकी सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय एकता का भी बोध कराएँ।
- शिक्षा से जुड़े अभ्यासकों को ध्यान रखना होगा कि शिक्षा के माध्यम से जुड़े सवाल को अधिक लचीला और खुला बनाते हुए भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता देने की संस्तुति ज्ञान के विऔपनिवेशीकरण के लिए आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी भाषा को स्थापित या पदस्थापित करने के विवाद में न उलझकर एन.ई.पी. 2020 एवं एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 में आवश्यकता एवं उपयोगिता के बीच सामंजस्य का सुझाव प्रस्तुत किया गया है।
- प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों में भाषिक दक्षताओं का विकास इस तरह से हो कि वे भाषा की शब्दावली, स्वरूप एवं संरचना को जानने के साथ-साथ इनके माध्यम से स्वतंत्र और सृजनात्मक चिंतन भी कर सकें।
- यह ध्यान रखना होगा कि वैचारिक स्वराज का रास्ता मातृभाषा से होकर गुजरता है, इसके लिए

भारतीय भाषाओं को भाषा शिक्षण के अतिरिक्त अन्य माध्यमों एवं विधाओं में स्थान देने की आवश्यकता होगी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भाषाओं में 'संकरता' की प्रवृत्ति को बाधक नहीं मानना होगा। हमें भाषा की सर्वदेशीयता को भी स्वीकारना होगा और तदनु रूप पाठ्यपुस्तकों, कक्षा शिक्षण और अन्य अधिगम संसाधनों का विकास करना होगा।

- इस सुझाव के अनुरूप राज्यों से अपेक्षा है कि वे भारतीय भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा के लिए पहल करेंगे तो विद्यार्थियों को उनकी रुचि के अनुसार स्थानीय, शास्त्रीय, विदेशी एवं आधुनिक भारतीय भाषा का चयन करने का अवसर भी उपलब्ध कराने की भी संस्तुति है।
 - प्राथमिक कक्षाओं में निर्देशन और संप्रेषण के रूप में मातृभाषा और स्थानीय भाषा के साथ-साथ हिंदी या आधुनिक भारतीय भाषाओं के उपयोग द्वारा अधिक समावेशी और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।
 - शिक्षक, सांस्कृतिक और वैश्विक रूप से प्रासंगिक साहित्य और सामग्रियों को अपनी शिक्षण प्रथाओं में भी शामिल कर सकते हैं, जिससे विद्यार्थी स्वयं के सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ वैश्विक रूप से जुड़ाव महसूस करेंगे।
- निष्कर्षतः एन.ई.पी. 2020 और एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 में विद्यार्थियों को भाषाओं के आधुनिक, समसामयिक और प्रासंगिक स्वरूप से परिचित कराने का अवसर उपलब्ध कराने पर

बल दिया गया है। इसके लिए इसका स्पष्ट झुकाव भारतीय भाषाओं की ओर है, लेकिन समकालीन वैश्विकता के प्रति सचेत रहते हुए 'वैश्विक भाषा' के प्रति भी सकारात्मक रवैया अपनाया गया है।

इस वृहद दृष्टि को शिक्षणशास्त्रीय अभ्यास में उतारकर हम भारतीय भाषाओं को वैचारिक स्वराज के लिए सांस्कृतिक और संज्ञानात्मक उपकरण के रूप में स्थापित कर पाएँगे।

संदर्भ

- अचेबे, सी. 1965. इंग्लिश एंड दी अफ्रीकन राइटिंग. *ट्रैन्जिशन*. पृ.सं. 18, 27. <https://doi.org/10.2307/2934835>
- अप्पिया, के.ए. और जी.जे. इकेनबेरी. 2006. कॉस्मोपोलिटनिज्म— एथिक्स इन ए वर्ल्ड ऑफ स्ट्रेंजर्स. *फॉरेन अफेयर्स*. 85(3), पृ.सं. 151. <https://doi.org/10.2307/20031977>
- किंग, बी., डब्ल्यू. हैरिस और ए. बंडी. 2000. सेलेक्टेड एस्सेज ऑफ विल्सन हैरिस. *द अनफिनिश जेनेसिस ऑफ द इमेजिनेशन. वर्ल्ड लिटरेचर टूडे*. 74(3), 569. <https://doi.org/10.2307/40155833>
- कैरासिओलो, एम. 2012. जे.एम. कोएल्जीज फो एंड एम्बोडिमेंट ऑफ मीनिंग. *जर्नल ऑफ मॉडर्न लिटरेचर*. 36(1), पृ.सं. 90. <https://doi.org/10.2979/jmodelite.36.1.90>
- थिओंगो, एन.डब्ल्यू. और जे.जी. कमोचे. 1987. डिऑलोनोईजिंग दी माइंड : दी पॉलिटिक्स ऑफ लैंग्वेज इन अफ्रीकन लिटरेचर. *वर्ल्ड लिटरेचर टूडे*. 61(2), पृ.सं. 339. <https://doi.org/10.2307/40143257>
- फैनन, एफ. 1961. *दी रेचड ऑफ दी अर्थ*. <http://dx.doi.org/10.2307/20048263>
- फ्यूसर, डब्ल्यू.एफ. 1988. वोल सोयिका— दी प्रॉब्लेम ऑफ ऑथेंटिकेशन. *ब्लैक अमेरिकन लिटरेचर फोरम*. 22(3), पृ.सं. 555. <https://doi.org/10.2307/2904315> से प्राप्त.
- ब्रेथवेट, के. 1984. *दी हिस्ट्री ऑफ वॉयस : दी डेवलपमेंट ऑफ नैशन लैंग्वेज इन एंग्लोफोन कैरेबियन पोइट्री*. <http://ci.nii.ac.jp/ncid/BA30910358>
- भाभा, एच.के. 1994. *दी लोकेशन ऑफ कल्चर*. <http://ci.nii.ac.jp/ncid/BA22500601>
- रा.शै.अ.प्र.प. 2023. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (अंग्रेजी संस्करण)*. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली.
- रुशदी, एस. 1992. *इमेजिनरी होमलैंड्स: एससेज एंड क्रिटिसिजम 1981–1991*. पेंगुइन बुक्स.
- शिक्षा मंत्रालय. 2020. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.
- सेनघोर, एल.एस. 1970. *नेग्रिट्यूड: ए ह्यूमनिज्म ऑफ ट्वेंटीथ सेंचुरी*. डब्ल्यू. कार्टे और एम. किल्सन (सं.), *द अफ्रीकन रीडर (दूसरा संस्करण)* में. विंटेज बुक्स.
- सेसायर, ए. और जे. पिकहम. 1972. *डिसकोर्स ऑन कॉलोनीअलिज्म*. http://abahlali.org/files/_Discourse_on_Colonialism.pdf
- हैरिस, डब्ल्यू. 1960. *पेलैस ऑफ पीकॉक*. फैबर और फैबर.